❋ अष्टादश रहस्य ❋

[रचयिता-रसिकाचार्य साकेतवासी स्वामी श्रीमद्‌युगलानन्यशरणजी महाराज]

आचार्यपीठ श्रीलक्ष्मण किला के संस्थापक रसिकाचार्य साकेतवासी स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज के स्वरचित चौरासी ग्रन्थ हैं, जिसकी सूची नागरी प्रचारिणी सभा काशी तथा लक्ष्मण किला स्थित सरस्वती पुस्तकालय में देखी जा सकती है। इन चौरासी ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, शेष अप्रकाशित ग्रन्थों के प्रकाशन की भी योजना बन चुकी है; निकट भविष्य में ही उनका भी प्रकाशन हो जायेगा। स्वामी जी संस्कृत, उर्दू तथा फारसी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके ग्रन्थों के अवलोकन से उनके पाण्डित्य-गाम्भीर्य और भावगरिमा का पता लगता है।

स्वामी जी के प्रत्येक ग्रन्थों में भगवन्नाम निष्ठा, धाम निष्ठा, रूप निष्ठा तथा लीला निष्ठा का सम्यक विवेचन हुआ है; साथही भक्ति-प्रपत्ति,-ज्ञान-वैराग्य, कर्म-उपासना आदि का शास्त्रीय विवेचन भी समीचीन हुआ है। कई ग्रन्थ एक-एक स्वतंत्र विषयों के प्रतिपादक भी हैं।

शरणागति का स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन स्वामी जी ने अपने इस 'अष्टादश रहस्य' नामक ग्रन्थ में किया है। यह अप्रकाशित ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त शरणागति स्तोत्र भी स्वामीजी ने अपने 'सनेह बाटिका' नामक ग्रन्थ में लिखा है, जो बड़ा ही हृदयस्पर्शी है।

स्वामी जी ने इस ग्रन्थ में शरणागति की अठारह स्थापनाएँ निरूपित की हैं। ये अष्टादश स्थापनाएँ शरणागति के षड्अंगों के अन्दर ही हैं।

ग्रन्थ के अन्त में ये अठारहों स्थापनाएँ गिना दी गई हैं। दोहे सरल-सुबोध और मर्मस्पर्शी हैं। शरणागति तत्वान्वेषी पाठकों के लाभार्थ हम सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। शरणागति विषय का ऐसा अद्वितीय निरूपण अन्यत्र दुर्लभ है। अवध-सन्देश के पाठक सावधानी से इस ग्रन्थ-रत्न का मनन करेंगे। स्वामी जी के ही शब्दों में-

प्रायश्चित्त-चित्त शोधन हित, एक अनूप बताऊँ।
जो कोउ करे सनेम प्रेम सों, पावै अविचल ठाऊँ॥
सब सन निरस होय सीतापति-शरण आस सरसाऊँ।
युगलअनन्यशरण सीमा सत शर्म गुह्य गुन गाऊँ॥

'रामजी रामायणी'

❋ दोहा ❋

पावन प्रेम प्रकाश निधि, प्रीतम प्रान पेयार।
वन्दे श्रीसत्गुरु सपद, पंकज बार हजार॥
श्री समीर नन्दन नवल, नेह निकेत निरीह।
चारु चरन चिन्ता हरन, नमो सुभाग समीह॥
श्री सहस्र सम्पन्न पद, पंकज सिय रघुवीर।
नमो निरंतर नेह युत, अद्भुत गुनन गभीर॥
श्री श्री सुचि सत्या सरस, सरजू सुपद मनाय।
वरनो बोध विचित्र प्रद, रहस पुरान सोहाय॥
अद्भुत अष्टादश रहस, सन्त सनेहित रीति।
सुनत गुनत मंगल अमल, उदय उरसि प्रभु प्रीति॥
चौरासी योनिन में, फिरत-फिरत मति मन्द।
कठिन कुसंगति कुमति मिलि, सह्यो असह दुख द्वन्द॥
विशद भूमिका सहित शुभ, सार अहित हरनेश।
करो निरूपन नाम बल, पाय सुगुन वरदेश॥
कर्म अनादि प्रवाह बल, बह्यो लह्यो नहि तीर।
दह्यो दुराशा अनल करि, गह्यो न पद रघुवीर॥
कबहूं अरघ-अरघ कहुँ, ऊँच नीच कुल जन्म।
घटी यंत्र समता सतत, खेदित तदपि न शर्म॥
निज स्वरूप अज्ञान ते, पायो अमित कलेश।
श्रीयुगलानन्य शरन कहाँ, कहे हाय सब देश॥
रूप आपनो भूलि के, ईश स्वरूप भुलाय।
दियो लियो ललना शरन, हियो तेहि हाथ भुलाय॥
जीव अविद्या विबस है, अहंकार अपनाय।
पुनि देहादिक में भयो, ममता रहु दुख दाय॥
तेहि दृग कठिन कुसंग गहि, राग द्वेष अघ रोग।
बाढ्यो ताको मित नहीं, सौयान हित सतसोग॥
राग द्वेष आवेस ते, पाप पुन्य भव होत।
पुनि दोऊ दुर्जन मिले, बहु विधि बपुगत जोत॥
देह सहित त्रय ताप करि, व्याकुल कर्म अधीन।
भ्रमत मोह निशि निविड़ महं, पुनि-पुन मूढ मलीन॥
ऐसे ही चिरकाल तक, घूमत खेद अपार।
पायो सो कहि जात किमि भव सागर मँझधार॥
नाना विधि व्याकुल हृदे, हेरि सदय सियराम।
निर्हेतुक निज कृपा तेहि, ऊपर करत सुधाम॥
श्री सीता पति अगति गति, दायक दीन दयाल।
करूणा कहि कहँ कोशके, सहज स्वतन्त्र रसाल॥
कछुक कर्म की संधि तहँ, अथवा ईश स्वतन्त्र।
श्रीयुगलानन्य शरन सुजन, समुझे मत सद तन्त्र॥
श्री अवधेश परेश की, कृपा छोड़ावत द्वेष।
सत संगति सनमुख करत, हरत विषम तम रेष॥
संत संग रस रंग निधि, पाय बहुरि सुख रास।
श्रीआचार्य्य समीषता, लहत समेत हुलाश॥
श्री सदगुरु करुणायतन, सुतन नशा उतराय।
श्री सीतावर माधुरी, रुचि तेहि हिय उप जाय॥
श्री कोशलपति पद अमल, कमल कोटि से स्वच्छ।
तिहि थल ताहि प्रवेश करि, श्री गुरुदेव प्रत्यक्ष॥
शरन गये ते होत जन, नाम प्रपन्न अनूप।
पूरन मन वच काय करि, अपर सुलहु गुनि रूप॥
साधन प्रथम प्रपन्न पुनि, शरन अनन्य सुजान।
तीजे भोग अनन्यता, तीन अकार प्रमान॥
तीन अकार त्रिकार भव, भंजन सुजन सहाय।
श्रीयुगलानन्य शरन हृदे, धारत मोद निकाय॥
जामे इह तीनों यथा, योग मिले परि पूरि।
सोई सर्वोपरि सुधा, सिंधु लहे रति भूरि॥
शरण हेतु यय जानिये, सर्व मुक्ति परिहार।
निज स्वरूप को उचित तिमि, पर स्वरूप मुद प्यार॥
ऐसे अधिकारी निपुन, निज-निज भाव समेत।
अष्टादश विधि सहित सब, सियवर कृपा उपेत॥
भलीभांति चित शांति युजि, कीजे मनन स्वरूप।
सद ग्रन्थन को सार शुभ, रहस विगत श्रम धूप॥

लच्छन प्रथम प्रपन्न को, कहो अजूब विचारि।
सुनत गुनत आमय नशात, रति अनन्यता धारि॥
श्रीसीतावर प्रान पति, प्रीनन परम प्रवीन।
तिन मधि सुदृढ़ अनन्यता, धारी धरम धुरीन॥
दृढ़ विश्वास उपाय पुनि, निज प्रभु कृपा उपाय।
विरस वासना विश्ववन, निरखि नैन बहवाय॥
साधन मंत्र सदैव गृह, नाम भजन अनुकूल।
सिय वल्लभ सम्बन्ध बिन बूझे अति प्रतिकूल॥
देवांतर संकलित कृत, करै न कबहूं भूलि।
युगलानन्य शरन रहे, भवन आपने फूलि॥
चातक पातक हीन सम, सुपन सजाय सदैव।
रहे मगन मन सुकन हित, घन सन नेह अतैव॥
मन बचकाय अनन्य निज, धर्म परम धन मानि।
युगलानन्य शरन सदा, शरन भरोस प्रमानि॥
देह रहे तक पद कमल, दंपति प्रेम सनेम।
स्वामी कृपा प्रसाद ते, अपनो योग सुछेम॥
जे जन या गुन ते सहित, संतत शौक सुलीन।
तेइ परम प्रपन्नता, भाजन परम प्रवीन॥
पुनि प्रपत्ति को रूप प्रिय, दूजो वदहि सुसंत।
दया अवधि सब विश्व को, उपकारी रसवंत॥
सकल भूत प्रियकर परम, सो प्रपत्ति धन योग्य।
सिय वल्लभ बिन आन को, निज मधि गुने न भोग्य॥
तृन छेदन के किये से, प्रबल प्रपत्ति विरोध।
ताही ते सियराम मय, सकल हेरिये सोध॥
जो कोऊ निज घात हित, आवै निकट प्रतच्छ।
तौ भी द्वेष न हिय धरे, हरषित मन तन स्वच्छ॥
गाथा यग अति हित ललित, निमित प्रपत्ति प्रमान।
वदहि विलच्छन स्वाद सजि, समुझहि सुबुध सुजान॥
श्रीसीता वल्लभ विशद, वानी सभा समीप।
लंकापति भ्राता गमन, समय मनहुँ दिलदीप॥
एक कपोती फंद मधि, ब्याध बझायो जाय।
अन अपराध अगाध दुख, दियो निशान बजाय॥

जाल बीच विह्वल विपुल, भाँति भई वह वाम।
तदपि दया आई नहीं, रंचक व्याध सकाम॥
बहुरि ब्याध तेहि तरु तरे, आके सहित हुलाश।
निशा अंधेरी छुत ग्रसित, विगत ग्रास जन फांस॥
पति लखि व्याकुल कह्यो तिय, सोच अनौसर काल।
येन केन विधि शीत अरु, छुधा हरिये ततकाल॥
धव पुनि कह्यो पुकारि के, प्रबल विरोधी ब्याध।
याके हित सतकार किमि, करों भरों अपराध॥
सुनि प्रीतम वर बचन तिय, कही सुधर्म स्वरूप।
आश्रम वरन सुरीति तिमि, दरसाई अनरूप॥
चाहे रचे विरोध कोउ, कोटिन भाँति उपाधि।
पै निज गृह आये उचित, बहु सतकार समाधि॥
विपुल बैर युत अहित पर, तदपि अतिथि नहि त्याग।
कीजे धर्म सुपथ निरखि, लगे न दिल दरदाग॥
बहुरि छुधा ब्याकुल हृदे, जानि कपोत कृपाल।
परयो प्रबल पावक अडर, धर्म समुझि नत पाल॥
सुनि सनेह सानी गिरा, पति अद्भुत तिय मानि।
अनल लाय तन सीत को, शांति कियो जिय जानि॥
दंपति भौतिक तन निदरि, सुयश बयुष बहु भानि।
गये स्वर्ग अपवर्ग सम, सुख सरस्यो पन ठानि॥
एक ओर मख राशि अरु, दान सुकृत समुदाय।
रच्छन एक दिशि जीव निज शरन तुलत नहि काय॥
शरनागत यासन सदृश, धर्म दूसरौ कौन।
करत प्रसंशा जौन की, निज मुख मंगल मौन॥
द्वीयीरिच्छ किरात की, कथा कलंक विहीन।
रिच्छ शरन प्रद कोल को, सहि शत संकट पीन॥
निरखो निज दृग खोलि के, पशु पच्छिन की रीति।
श्रीसीता वल्लभ चरित, अति अद्भुत नव नीति॥
मृगया हित कानन गयो, एक किरात कराल।
बीच विपिन तन प्रान हर, भेट्यो बाघ विशाल॥
तेहि पाछे लाग्यो बहुरि, कोल भग्यो भय मानि।
अति आकुल तरु पर चढ्यो, गति विरहित पहिचानि॥

तहाँ निहारयो नैन भरि, तेहि समान रिपु रिच्छ।
जिमि निज देश सखेद तजि,गये जहँ-तहँ दुर्भिच्छ॥
सो पुनि निज सुत सम कह्यो, गह्यो बाँह हरषाय।
बहुरि सुधर्म प्रबोधि तेहि, आदर कियो सममाय॥
आयो वाघ समीप तरु, बोल्यो बचन सप्रेम।
मम भोजन दीजे जलद, मीत रिच्छ हित छेम॥
हम तुम दोनों एक बन, बसे सदा एक संग।
ताते उचित न होत प्रिय, मानव असत प्रसंग॥
पुनि अहार छीनब अधिक, अनुचित किये विचार।
ताते तेहि वितरिय तुरित, रहो हरित बलिहार॥
सुनि ताकी बानी बिबिधि, स्वारथ सानी तौन।
बोल्यो बचन विचित्र तर, धरो आय मुख मौन॥
प्रान जाय तो जाय जड़, मानुष मिलन महाल।
शरनागन पालन धर्म, हौं समुझत बुधि बाल॥
याही विधि उत्तर दियो, कियो अनुत्तर ताहिं।
श्रमित रिच्छ सोयो तहाँ, भय विरहित तेहि माहिं॥
शीश सौंपि तेहि अंक मधि,सुवन सुमति दृढ़ आनि।
आयो पुनि गज रिपु तहाँ, निज भोजन रुचि ठानि॥
मधुर नरम प्रिय बचन पुनि, सहित सनेह पुकारि।
कह्यो किरातहि तौन पशु, नायक सुजस उचारि॥
दीजे याहि गिराय अब, लीजे प्रान बचाय।
नातरु तोहि संघारि है, अबस जागि ललचाय॥
कोल महा भूदेश शठ, विगत बिचार प्रकार।
ताहि गिरायो बल विपुल, सहित अधम धिक्कार॥
रिच्छ कलाविद पकरि तरु, साख बच्यो तित भूल।
जान्यो जिय अपराध तेहि, गयो तदपि अति भूलि॥
बोल्यो बहुरि सुरिच्छ सो, भृगपति बच युत भेद।
हे,यो मानुष चरित कछु, दियो चहै तोहि खेद॥
ताते अब त्यागिये बृथा, ऐसो संग कुरंग।
हम सब बनचर को कहा, शरनागत परसंग॥
अति अनूप उत्तर दियो, ऋच्छ नाथ सुनि कान।
निज रक्षा कारन कियो, नहि अपराध प्रमान॥

शरनागत पर धर्म इह, भाग विभव बल पाय।
सुर नर खग पशु प्रमुख में, प्रगट होत हरषाय॥
गयो बाघ आशा रहित, समुझि यथारथ रीति।
रिच्छ नाह कटु कोल सन, कियो बहुरि अति प्रीति॥
बोलेउ तेहि रिच्छ पति, अति हित बारंबार।
भूख प्यास युत तब वदन निरखत खेद अपार॥
ताते मैं अब ही ललित, आवो फल मुद मूल।
जेहि पाये बहु दिन छुधा, जनित रहे नहि शूल॥
अस सुचि बचन उचारि पुनि,विपिन गयो खुशहाल।
इहा किरात कराल ने, हन्यो रिच्छ पति बाल॥
छुधा व्याध व्याकुल मलिन, कर्म कियो गत शंक।
तउ तित आय न कह्यो कछु, रंच न दियो कलंक
सुन्दर फल अशवाय तेहि, कीन्हो अधिक निहाल।
कहिये कौन कथा कलित, समुझत नशत दुकाल॥
तब किरात भाख्यो सधम, राज कुवाक कराल।
बिदा मोहि कीजे कृपा, गार सहित प्रतिपाल॥
सदन सुवन शिशु तर अवर, मम आधीन दयाल।
मिल्यो न मोहि बन मांसकछु,केहि विधि करौं निहाल
निज तन मोदित ऋच्छपति, दियो समेत उछाह।
प्रान गयो पर आह नहि, है अद्भुत रुचि चाह॥
आदि अन्त लौं हेरिये, गाथा परम पवित्र।
प्रान त्यागि सुरलोक पति, सदन सिधायो मित्र॥
सुरनर मुनिमन मधि भयो,अति आचरज खेयाल।
प्रभु करुणानिधि दिशिनिरखि,समभयो रहस रसाल
केती पीठिन से सहित, पहुँच्यो सुरपति धाम।
अधिकारी अपवर्ग को, समय पाय अभिराम॥
प्रिय परिजन तन प्रान धन, सर्वस रिपुहि प्रदान।
करहि सुजन निज शरश तकि,छकि परधर्म प्रप्यान॥
प्रभु अनुकूल प्रपत्ति पर, तिनहि उचित इह रीति।
तिमि निज स्वामी माँझ गुन, गुने सजाय सुप्रीति
सुचि सज्जन तन धन निखिल, है पर हेतु न बीच।
चोणीचो निज गिरि प्रमुख, रहस अनूप अचीच॥

तीजे संत सुभाय सुचि, कृपा निधान प्रवीन।
तस्कर हूं बसकर लियो, सहि छत गात सुपीन॥
सिय जीवन संबंध युत, जन अन्तर नहि चित्र।
छन-छन नत रक्षक सुगुन, गावत परम पवित्र॥
ताते सब ही भांति से, अंग अंग पर काज।
मांझ मिलावो छोड़ि छल, छाया असत समाज॥
प्रथम प्रपन्न स्वरूप कहि, लहि हिय हरष हजार।
पुनि प्रपत्ति निष्ठा द्वितिय, कही स्वमति अनुसार॥
बड़भागी रागी वही, रमे जो जुगल मझार।
श्री सदगुरु संबंध गहि, उर्तार गये भव पार॥
जुग रहस्य पूरन भयो, नयो दयो आनन्द।
अब तीजी निरमय रहस, बरनो समन कुफंद॥

* तीसरा रहस्य *

निर्भरत्व अति तर चमत्कार विचारत चित्त।
शोक मोह ममता असद, आशा अमत अनित्त॥
आतम बपु निर्वाह जुग, लोक योग युत छेम।
सिय बल्लभ आधीन गुनि, बिगत शंक दुति हेम॥
संशय रती न लेश जिय, जीवन सुगुन विचारि।
अति उमंग प्रमुदित हृदे, निर्भरत्व छवि धारि॥
स्वर्ग नर्क विधि लोक लौं, गमना गमन हमेश।
केवल कर्मनि के विवस, तिहि हित खेद न लेश॥
मन तन बच कृत आपनो, भोगहि क्रम अनुकूल।
ताते याहू ठौर नहिं, उचित कैसेहू शूल॥
कर्म शुभाशुभ अव र, भोगन परत न बीच।
मिटत मिटाये से नहीं, ताते हरष अकीच॥
कर्माधीन शरीर लखि, आस भरोस विसारि।
बपुष पालिवे ओर ते, आसंदेहता धारि॥
निज स्वरूप निर्वाह श्री, रघुवर तन्त्र हमेश।
ताते दृढ़ विश्वास सजि, चिन्ता मुक्ति न लेश॥
श्री मद्रामयन सुधा, सरस रसायन मांझ।
श्रीसीतावर बचन छवि, चितवत भोरहु साँझ॥
सकृत नमत तब हौं बदत, याचत युग कर जोरि।
अभय दान सब ओर ते, होत त्रिगुन तृन तोरि॥
बार बार सत सभा मधि, कह्यो कृपाकर राम।
सुचि'तवास्मि'त्रय बरन कहि,पावत मम प्रियधाम॥
निज दृढ़ ब्रत रघुराज जू, श्रीवर बदन पुकारि।
सुग्रीवादिक कपि प्रबल, युक्ति अनीश निवारि॥
बिन बुझे कहत बकत थकत न विगत बिचार।
युगलानन्य शरन सुबच, गुनत प्रमोद अपार॥
श्रीसीतावर पन परम, परखत बढ़त विनोद।
दुरत दाह दारुन दरद, बाजत रहस रसोद॥
सिंह सबल शरनहु भये, जो कहुँ ग्रसे सियार।
श्री युगलानन्य शरन हरिहि, होय लाज बहु बार॥
निर्भरत्व धारे रहो, गहौं प्रान पति टेक।
खटका हरगिज होय जनि, राखिये बलित विवेक॥
अन्तकाल कफ बात बस, बिवश बपुष होयजात।
रुद्ध कंठ सेवक निरखि, करत सुर'त दुति गात॥
श्री मुखवर बानी सुधा, सानी तेहि छिन माहिं।
हौं सुमिरततेहि अनुग कह,करि निज भुज धुजछांहि॥
इत्यादिक नाना, बचन, वेद पुरान प्रमान।
श्रवन मनन दिन रैन करि, परिहरि ज्ञान गुमान॥
पुनि स्वामित्व बिचारि जिय,जगजस जहर ज ाय।
आतम बपु रक्षा फिकर, जिकर बहाय बलाय॥
निश्चय वृति विहाय भ्रम, श्रम लौकिक व्यवहार।
भजे जानकी जानि पद, असद दमन सुखसार॥
बसे धाम विहरे धरा, धंध बंध बिसराय।
श्रीयुगलानन्य शरन हृदे, निर्भरत्व छवि छाय॥
लहरत तन अन्तर ललित, लालन सुगुन सुगंध।
ठहरत चित मन मति कलित,ठौर लखत नहि अंध॥
निर्भरत्व गुन तीसरो, रसिकन सतत समीय।
श्रीयुगलानन्य शरन हृदे, डारत सब विधि लीय॥

* चौथा रहस्य *

अब तुरीय बरनन करो, लच्छन शून उपाय।
केवल कृपा कटाक्ष की, आस अधिक दरसाय॥
राज्बल अमल अनूप अल, त्यागी निकर उपाय।
भागी कृपा प्रपत्ति की, अनुरागी गुण गाय॥

कर्म ज्ञान अरु भक्ति ते, आदि उपाय प्रसिद्ध।
तिहुँ अन्तर कटाक्ष विपुल, स्वरूप अमित दिन सिद्ध॥
देश कलकत्तो सुधन, कर्मा पेक्षित जानु।
बिकल अंग फल अफल सम, दायक खेद महान॥
ज्ञान चारि साधन सहित, अति दुर्गेय स्वरूप।
समता विगत बिनाश पुनि, विघ्न अनेक कुरूप॥
नवधा भक्ति बिचित्र तर, तदपि काल बहु होत।
फल प्रद सद मत सार लहि, शरन मोह निधि पोत॥
जीव अज्ञ पुनि शक्ति ते, रहित दान सब काल।
ताके हित सब विधि सुलभ, शरन प्रपत्ति रसाल॥
छन ही मांझ मिलाय प्रभु, देत कराय न देर।
सकृत कहत नहि अलपहूं, होत रंच अब सेर॥
ताते लौकिक बैदिकहुँ, धर्म समान विहाय।
श्री सियवर शेषत्व दृढ़, परम धरम मन लाय॥
संतत परम प्रमोद रस, सिन्धु मगन ह्वै चित्त।
शरन बिना साधन सकल, बिसरावै युत मित्त॥
धाम नाम लीला ललित, रूप सन्त गुरु एक।
चाहे जाके शरन होय, रहे गहे दृढ़ टेक॥
तामे सुलभ विशेष सुठि, धाम प्रपत्ति अनूप।
अपर कठिन इह संग सब, सहज सुसंत निरूप॥
अतिशय शून्य उपाय करि, निज मन मुकुर सदैव
धाम वास सजु स्वपर सुख, झलके दगन अतैव॥
श्रीयुगलानन्य शरन अधम, नीच उपाय विहीन।
केवल कृपा कटाक्ष के, रहत सदा आधीन॥
भेद न मानव कहत मधि, है षट एक स्वरूप।
सुलभ सकल तामे सुलभ, है श्री धाम अनूप॥
रूप मध्य अर्चा सुलभ लीला मधि माधुर्य्य।
नाम बीच श्रीराम इह, सुलभ सहित रस धुर्य्य॥
धाम काम प्रद श्री अवध, परम सुलभ जिय जानु।
श्रीगुरु रसिक सुसंत पुनि, रसिक सुलभ पहिचानु॥
ताते सुलभ स्वरूप, साजो सरस सनेह।
त्यागि निखिल साधन कठिन, शरन सुखद सम मेह॥

प्रिय प्रपत्ति निष्ठा कही, लही ललाई लाल।
श्रीयुगलानन्य शरन नहीं, शक रंचक तिहुँ काल॥
श्री श्री रसिकन की कृपा, सुमति पाय रस स्वाद।
परतंत्रता निरूपिके, कहो अशंख अनाद॥

* पंचम रहस्य *

जिमि गो गोपाधीन ह्वै, बरतत तिहिं अनुसार।
सहत विविधि बाधादितऊ, बदत न बैन विकार॥
चाहे जत्र स्नादिको, दान करे गोपाल।
कहत कदाचित सो नहीं, इमि परतंत्र रसाल॥
जैसे शिशु अति अबुधतर, जननी जनकाधीन।
रहत निरंतर मोह मन, इच्छा रहित प्रवीन॥
ऐसे ही श्रीजानकी जीवन रसिक सुजान।
माने तिन्हें सुनाथ निज, ह्वै आधीन अमान॥
उचित टहल निज ग्रहण करि, परिहरि हृदय मलान।
तर्जन भर्त्सन दुर्वचन, सहे सदा सुखमान॥
आधि व्याधि मानस वपुज, करत तितिक्षा नित्य।
सपनेहू सत्संग ते, गत निर्वेद सुचित॥
तन मन धन सर्वस्व सब, अर्पे रसिकन पास।
कृपा अलौकिक एक रस, लहे सियावर पास॥
मगन रहे सियाराम, के दास दास पद लेय।
श्रीयुगलानन्य शरण हिय, सपनेहुँ फुरे न हेय॥
अर्चन निकर सुमध्य मधु, मधुकर सियावर सेव।
ताहुँ ते सब विधि सुखद, पूजन रसिक अमेव॥
सेवत सहित सनेह श्री, सीतावर दिन रैन।
रहित संत सेवा विफल, दंभ रूप गत चैन॥
सुत सेवत जननी जनक, परम परेश हमेश।
निज सेवत सुत पद निदरि, हृदय हरष नहीं लेश॥
पौरुष बैन विचार करि, अर्थ अनूप निहारु।
श्रीयुगलानन्य समाद नित, रंचक खेद न धारु॥
यथा विषय आसक्त नर, सहत वाम वट बैन।
महा खेद प्रद लोक युग, जानत जहर दुखैन॥
श्रीसीता रघुवीर रस रसिक बचन कटु नाहि।
है तीषन औषध परम, रुचत हतत रुग ताहि॥

जिनके श्री सियवर सजन, भजन यजन नहीं चाह।
ते पांवर पाखंड प्रिय, हिय अन्तर दिन दाह॥
राम रंग रस सिन्धु मधि, मगन जौन जन स्वच्छ।
तिनके संगति से सरस, सियवर रूप परतच्छ॥
सुधा सहस्र सम असम सम, करण भरण छवि सारु।
निशिवासर मन मनन युत सुनिये सम प्यार॥
ताते तजि निजि तंत्रता, पूजै रसिकाधीन।
श्रीयुगलानन्य शरण सुभग, परतंत्रता प्रवीन॥
सिय वल्लभ शेषत्व में अधिक रसिक रस लीन।
समुझे सुजन सरोद गुण, छके नीर रस मीन॥
श्रुति स्मृति सकल, विकल महाबनिहार।
सेइये श्रीसत पद पदुम, सर्वोपर सुखसार॥
भाते परम उपाय जग, जाय हाय दातार।
ताही से समुचित सतत, संत उपासन सार॥

षष्ट रहस्य स्वरूपा वेश

अव अनुपम आभावलित, लजित मनोहर रूप।
सुमिरत सहज सनेह मय, तन्मयता सु अनूप॥
अप्राकृत लक्षण सरस, समुझत उघरत नैन।
मिटत मोह मय वपुष रुचि, सुचि सत सरसत चैन॥
कारण सूक्ष्म थूल तन, अतन निवास सखेद।
मूल सप्तदश भीश फल, जनित असौस समेद॥
तीनों तन विष वन वनज विश्व सरोवर मांझ।
श्रीयुगलानन्य विचार युत, दरशत प्राप्त न सांझ॥
ताते मेरो मन हरण अमल, अखंड स्वरूप।
अचल अभय अनवद्य सियराम अंशगत धूप॥
देह जनित बाधा विविधि, विधि निषेध व्यवहार।
स्वप्नेहू नहि पाइहैं, कमठ पीठ क्यों बार॥
निज पररूप विचारु विन, वह्यो मोह मय फंद।
सो विवेक संयुक्त, छेद न होत अमंद॥
बीज विस्मरण वासना, वपुष बीच मुद मोह।
श्री विहाय भ्रम हेरिय सुख संदोह॥
प्राकृत वपु निजि रूप, वरतत जे जड़ जीव।
श्रुति सम्मत संसृत सदन, हैं सोई विन पीव॥
प्राकृत मिलित आकार निज मान अज्ञान।
तैसेही विज्ञान वस, पराधीनता हान॥
उभय विकल्प कुतल्प मधि, सैन सजत वस मोह।
जागे जीव सुपीव जब, करे अधिकतर छोह॥
देह करण मन मति निचै, करहि परस्पर चाह।
नित्य वपुष गति पृथक पुनि, आतम अमल अदाह॥
शांत नितान्त उपाधि विनु, गुणातीत सद्रूप।
सदा अविद्या पार तिमि, सच्चिद मोद स्वरूप॥
जाते आपन रूप पर, सदा विचारि विचारि।
तजे अहं ममता उभय, तुच्छ निहारि निहारि॥
श्रीजीवन धन जानकी, जीवन तंत्र हमेश।
निज स्वरूप दृढ़ समुझि तजि स्वतंत्र निमेश॥
श्रीरघुकुल भूषण नवल, अंश सरस अनुमानि।
श्रीयगलानन्य शरण सदा, परिहरु हृदय गलानि॥
प्रीतम परम परेश श्रीसीताराम कृपाल।
श्रीयुगलानन्य शरण दया, सम्भव रहस रसाल॥
श्रीआचारज वर्ण के, संग विना निज ज्ञान।
मिलन कठिन हिय सुदृढ़, गहि करु श्रीगुरुपद ध्यान॥
श्रीजीवन धन गुरुचरण, नवल चरित सुख सार।
पुनि पुनि वंदि सनेह सह, काठति निरधार॥
एक चित हित सहित शुभ लक्षण नवल अनूप।
वर्णो एकान्ति नवल सुनत विमल नव रूप॥

सप्तम रहस्य चरितामृत पान

श्रीमधुरालय मन रमण, चरित अमी नित पान।
करत निरंतर नेम करि, परिहरि चाह जहान॥
भक्ति मुक्ति इच्छा रहित, केवल प्रभु गुण गान।
पुलक हर्षत अहोनिशि, मन सुख सिन्धु समान॥
कमल अमल दल सम रहत, जगजल संग सचेत।
लिपत न तिलभर सपनेहू, रंगे सियावर हेत॥
जैसे कीट कुलाल नित, वसन पंक ही साथ।
पावत पंक न लेप कछु, तिमि हरिजन गुन गाथ॥
पुत्रकलत्र भवन विभव, माझ मोह मय रीति।
बाहर दरसावत हृदय, अति निर्मोह सुनीति॥

परदारा परधन सतत, परसुत द्रोह विरोध।
करत कदाचित हूं नहीं, पाय सुसम्यक बोध॥
देह गेह भाई कुटुम, संसृत कठिन कराल।
जाने यथा पतिव्रता, परपुर वास विहाल॥
परम पतिव्रत धर्म युत, ललना एक अनूप।
पति वियोग पुर वसत पै समुझत तम कूप॥
यद्यपि तहाँ विशाल बहु, सुरपुर सत सम साज।
तदपि रुचत रंचक नहीं, निरय अमित रस राज॥
तहँ अनेक बाधा विषम, विषय बुझावन हार।
पै वाके हिय पिय बसें, पल पल विरह हजार॥
तित प्रीतम पद ध्यान धरि, सोचत समय विहाय।
आय मिल्यो धव निकट से, दूत एक सुख दाय॥
तहि बहुविधि प्रीतम सुभग, गाथा कहि अनूप।
सुन्यो श्रवण सुख सहज लहि, सुधा सहस समरूप॥
सो अवलम्बन दै गयो, प्रीतम मिलन अदेर।
ह्वै है नहि संदेह कछु, तव प्रीत मन मेर॥
यहाँ अधिक वेदन सह्यो जात छण नाहि।
मिली तहाँ तेहि नगर की, नारी अति हित चाहि॥
तासो भइ सहेलि पन, साँचा कपट विहीन।
प्रीतम चारु चरित्र पुनि, कही सुनी रुचि लीन॥
कछु दिन गुन नव नाह को, सुनत स्वचाह अथाह।
उपज्यो हृदय उछाह अति, पल पल नेह उमाह॥
कछु वासर बीते विजय, करि रिपु सदल कृपाल।
प्रीतम प्रेम निकेत निज, उर ल्यायो महिपाल॥
सुन्दर सदन सुमाय सुख, सौंपत तेहि थल लाय।
देयो दयानिधि अमित मुद, चरचा चटक चलाय॥
ऐसेही श्रीराम प्रिय, देह गेह मधिवास।
करत सुगुरु संबन्ध लहि, सियवर सुधि लहि आस॥
इत बहुविद न घर अ र संग बदरंग।
रसिक सजाति सकि मिलन, हिलन ललन निज अंग॥
तिन सनस्सनिधि गुण सुनत सुमिरत श्रीनृपलाल।
येन केन विधि दुखित दिल, बितवावत कटुकाल॥

स्वल्प दिवस मधि आय पिय, सुन्दर नवलकिशोर।
कृपा कलित काया विगत, माया स्वत चख चोर॥
प्रकृत वासना विलग सज्जन सुमन सुखेन।
छन छन माझ अनन्त मुद, दायक प्रियवर बैन॥
बहुरि लाभ निज धाम मधि, देत अलौकिक मोद।
श्रीयुगलानन्य शरण सदा, राखहि सहित विनोद॥
जैसे रावन असुर दलि, ल्याये प्राण पियारि।
तैसेही मोहि प्रकृतिते, ते लै जैहैं श्रम हारि॥
जौं लौं दैव अवधि कछुक, तौं लौं सहज सुभाय।
करे देह कृत काज सब, अन्तर रहित उपाय॥
दुखदाता एहि जीव को, मन कृत संग विशेष।
ताते करण कंदव प्रभु पद अरपे अविशेष॥
अन्तःकरणादिक निखिल, चीज जहाँनी जौन।
तबहीं लगि भाषत हृदय जब लगि लगन न भौन॥
लगन लगावै लाल छबि सुजस जाल के साथ।
श्रीयुगलानन्य शरण अवस होवे सहज सनाथ॥
लच्छण एकान्ति विषद, धरे जौन चित बीच।
श्रीयुगलानन्य शरण लहे, सुपद विगत गद नीच॥
लोचन प्रीतम मिलन मग, रहे पसारे रोज।
श्रीयुगलानन्य शरण सुखद, एकान्तिक चित चोज॥
असद उमंग तरंग तर, उठे हृदय एक तार।
श्रीयुगलानन्य शरण सुभग, रंगी नित्य उदार॥
नित्य रंग सम्पन्न सद, अ द वासना हीन।
नितरंगी सोई सुभग, कुशल कोश पन पीन॥
नूतन रुचि सुचि सार सोई, शस्वत सुख रमनीय।
महा मोद मंगल तबहिं, सब प्रकार कमनीय॥
शोक समुंद सोखन तबहिं, पोषन निज नव नेह।
जेहि छन सियपिय गुन कथन, श्रवण स्वाद सुख मेह
रसिक उपासक भक्त गुण, खान सुजान विशेष।
गुनगन सुविटन बचन मन, रहित राग जग द्वेष॥
अर्ध निमेषहुँ जग जलधि, जिकर जानि दुख खान।
करत नाहिं सपनेहुँ कहुं, बिन वल्लभ अविधान॥

जैसे वामा बचन प्रिय, लम्पट नर न सोहात।
ताहू अधिकी रुचत सियवर सुगुन जमात॥
याही विधि श्रीराम यश, सुनत गुनत वर बैन।
वदत विमोहत एक रस, उपजत अति चित चैन॥
श्रीगुण श्रवन मनन नितै, करत अनूप विचार।
उदित उरखितम सम हित, दिव्य दिनेश कतार॥
होत उदय गुरु ज्ञान धन, अमन करावन हार।
श्रीयुगलानन्य शरण कहो, तासु रूप सुखसार॥
अन्तर्यामि सियावर, विलसत हृदय निकेत।
सदा नियामक एक रस, अद्भुत ज्ञान उपेत॥
तृणहुँ को नहिं होत है, तेहि बिनु चलन कदापि।
ऐसी सत्ता सकल गुण, सहित विगत संतापि॥
जो परधन परदार में, निरत वदत कटु बैन।
हिंसा प्रिय पांवर अधिक, संग मोह निसि सैन॥
रागादिक ते कलुष चित्त, सहित वासना जोय।
ताके हृदय निवास नहि, श्री सीतावर होय॥
जैसे कीच मलीन जल, मध्य बसत नहि हंस।
ऐसे ही मूरति मधुर, बसत न हिय भव भ्रंस॥
अग जग मधि आकार बिनु, सत्ता मात्र स्वरूप।
बसत सदा साखी निपुन, नहि वह द्विभुज अनूप॥
ताते द्विभुज स्वरूप हित, परिहरु विषय मलीन।
मद मत्सर्य कदर्य गुन, असत वासना भीन॥
पौरुष गिरा अशंतता हिंसकता दुख हेतु।
त्यागे गहि उनतीश शुभ, लच्छन नेह निकेतु॥
जो यहि भांति सुभग चले, भले वही सब तौर।
श्रीयुगलानन्य शरन हिले, नहि रंचक तजि गौर॥
ऐसे सत जन ज्ञान मधि, विहरत सिय सह श्याम।
खेद खाम तिनके न फिरि आठ जन्म आराम॥
जाके मन मानस मधुर, रूप मराल न वास।
सो जीवत शव सम सदा, समझो कलि मल रास॥
श्रीसियवर मधि अखिल अंग, अरप्यो प्रीति समेत।
कियो लियो मल लाह तिन, सब प्रकार जस स्वेत॥

जन्म मरन बाधा मिट्यो, कट्यो कठिन भव बास।
अट्यो न पुनि जगविपिन मधि,दट्यो धाम अभिलाष॥
समुझि बुझि सब सुहृद निज, हृदै कंज के बीच।
तजु अमाय रागादि तम, भजु भजनीय अभीच॥
श्रीयुगलानन्य शरन भन्यो, नित रंगित्व विचारि।
जो धरि करि प्रेम मम, तेहि हिय लसत खरारि॥
श्रीआचारज रसिक गुरु, कृपा कटाक्षाधीन।
श्रीयुगलानन्य शरन रहत, तजि वपु विषय मलीन॥
यद्यपि हौं अतिशय अबल, सबल शरन सियाराम।
तेहि बल लवलेशहि लहे, गरजहि जन वसुयाम॥
श्री परमेश पुनीत पद, परायन रस एक।
एकांती सोई परम, चरम बचन जेहि टेक॥
अपर देव द्वति बंस एव, रूप भजन कोऊ भाँति।
करे न सपनहुँ जानकी, रमन रहित गुन भ्रांति॥
श्रीसीतावर माधुरी, महा मधुर रस पान।
करत मत्त निश दिन रहे, जहे वासना ध्यान॥
मूल निषेचन से सकल, डार पत्र सुख होत।
तैसे ही सियलाल भजि, निखिल सुरन मुद जोत॥
बिबिधि ईश बेदन विदित, अंगी अंग सुभेद।
ताहू मधि समुझन कठिन, विगत नेह निर्वेद॥
श्रीसीता बल्लभ सही, साँचे ईश सुभूप।
जिनकी कीरतिकला, व्यापि रही अनुरूप॥
श्रीसतगुरु करुना भवन पास खास सत सीख।
सीखे सदा सचेत चित, हित वित सौंपि सुभीष॥
जाने भली प्रकार से, तीन तत्व सुख खान।
तैसे ही तीनों रहस, समुझे सुबुध सुजान॥
श्रीसतगुरु आरत हरन, निकट नवावै शीश।
ताही शिव को होत है, युगल रहस बकशीश॥
मन मानिक श्री गुरु चरन, चारु सभीय हमेश।
करे समरपन भाव भरि, परिहरि कृपिन कुदेश॥
अर्थ सुयंचक ममन नित, त्यागि विजाती संग।
इह समूह अंकन सहित, परम एकांती रंग॥

सहज सुलभ सुन्दर सुखद, द्वय वर अर्थ बिचारि।
निज स्वरूप अधिकार गुनि, पर स्वरूप निरधारि॥
ऐसी चित की वृति मधि, हेतु कवन मुद दैन।
कारन बिन करुना कृपा, सागर निरखु सुनैन॥
तिहि श्रीमति करुणा कलिन, करवावहि गुरु मेलि।
पुनि तिनके सम्बन्ध से, चित चख चारु चमेलि॥
अद्भुत रहस्य अनादिअल,अमल सुहृण तेहि भास।
परत-परत तम मोह निधि,निश दिन विषय उदास॥
अब श्री गुरु के निकट जिमि,जाय शिष्य सजि नेह।
प्रश्न सरस पूछन तिन्हें, वरनब श्री गुन गेह॥
श्री आचारज वर्य्यते, निज दुख कह्यो कराल।
पुनि पूछयो निज तरन हित, मंत्र अनूप रसाल॥
सुनि करुनानिधि बैन इह, आरत सहित विशेष।
शरन स्वाद प्रद द्वै ललित, दियो समर्थ सुवेश॥
साधन अपर निवारि सब, मरम लखायो तासु।
जेहि जानत मंगल भयो, गयो विविध भ्रम आसु॥
पौचहुँ सविधि सनेह से, संस्कार पुनि पाय।
भयो एकांती सो परम, श्री गुरु सुपद सहाय॥
सुभग रसायन रस बन, हरत हीय नति अर्थ।
सकल पदारथ हेय अति, चर्म बदत हरि व्यर्थ॥
द्वय पद अर्थ अनर्थ हर, बार बार नति माह।
अनायास मंगल ललित, मोद प्रदेश पनाह॥
अर्थ तीन पद ग्रहन करि, परिहरि विविध विषाद।
निज स्वरूप साधन सरस, त्यागि विरोधी बाद॥
देह अनातम आतमा, भांति जनक अनुमानि।
अहंकार ममकार को, परम बिरोधी जानि॥
हेय स्वल्प चंचल बिषय, बिष ते अधिक निहारि।
त्यागि भोगता मति असत, हानि स्वरूप विचारि॥
यह सुभांति थिर वस्तु गहि, रहे हमेश हुलास।
जो कबहुँ वपु उर फुरे, तेहि छिन करे निराश॥
जैसे श्रीरघुवीर रन, धीर बिरोधी दुष्ट।
कुम्भकरन रावन प्रमुख, तिमि यह वपुष असुष्ट॥

तिनके दर्शन मात्र से, होत भीति जेहि भाँति
तैसे ही अध्यास तन, वतन हरन गत शांति॥
ताते तन तनया तनय, दारा गेह समाज।
सछल समुझि त्यागन उचित, सेवत गुरु महराज॥
श्री श्री सतगुरु पद पदुम, परम पराग पुनीत।
सतत लगावो भाल भल, अमल कांति नित मीत॥
अतिशय शीघ्र विमुक्ति भव, बंधन होत न देर।
यथा उरग विव जानि हरि सुमरत हनत न फेर॥
परम उदार असार शक, सहस समन को हेतु।
श्रीसतगुरु सर्वेश सम, भव दुस्तर सुचि सेतु॥
तन मन धन जन गन रमन, लायक चीज समूह।
श्रीसतगुरु पद पंकरुह, मांहि समर्पे व्यूह॥
श्रीसीतापति सरस सुचि, सेवा श्री गुरुदेव।
सकल सुकृति सुख सार फल, अफल हरन प्रद भेव॥
श्रीसीतावर गुरु कृपा, जुगल पाय दृढ़ बोध।
करत दैव वश शुभाशुभ, होत न कर्म निरोध॥
योग मोद सीमा गुनत, प्रिय वियोग दुख पुंज।
प्रेम पगे डोलत फिरत, श्री प्रमोद बन कुंज॥
देवतांतर सहित अरु, विषय बलित जो होय।
सपनेहू सुमिरे नहीं, उभय सुप्रभु मुख जोय॥
नेह निसोत अनूप श्री, दम्पति पद जल जात।
सदा ध्यान धरि शौक करि, पल पल वपु पुलकात॥
श्रीयुगलानन्य शरन सुभग,गुन उज्जवल मग पाय।
जो न चले चित भ्रांति तजि,सो अति अज्ञ नसाय॥
श्री रघुवीर सुधीर से, सहज जीव सम्बन्ध।
तेहि बिज्ञान विहीन सठ, फस्यो मोह मय बन्ध॥
करन योग परिहार नहि, सुचि सम्बन्ध अनादि।
ज्ञान उचित ताको अवश, तजि भव जनित प्रमाद॥
जेहि परेश को वपु विशद,चिद अरु अचिद विचित्र।
है तन्मय अग जग निखिल, बूझत परम पवित्र॥
सहज शरीरी एक रस, राजत श्री रघुबीर।
याते राम सुनाम इह, गाजत नित उर धीर॥

सीताराम प्रभा प्रचुर, व्यापक छुट मठ जानु।
श्रीयुगलानन्य विवेक बिनु, बकत आन की तान॥

यह सम्बन्ध समान कहि, पुनि विशेष सुख खान।
भाव पांच सोइ साँच शुभ, सत सम्बन्ध सुजान॥

ताते ताके हित करे, मान त्यागि सतसंग।
श्रीयुगलानन्य शरन अवश, पावै सियवर रंग॥

श्री रघुवर बर बानि इह, अद्भुत नेहिन साथ।
अनुगामी गोवत्स इव, रहत सुकरत सनाथ॥

श्री मुख बचन विनीत तर, साखी वेद पुरान।
निज बपु पावन हित फिरौ, तिन पीछे बिन मान॥

ऐसो श्री अवधेश गुण, शील स्वभाव अनूप।
लखे बिना भटकट फिरत, परत मोह तम कूप॥

यद्यपि अधम मलीन इह, तदपि कृपाल खरारि।
तजत न काहू समय प्रभु, याको संग विचारि॥

जैसे पूत कपूत को, जननी 'जनक न त्याग।
करत फिरत पाछे लगे, निश दिन युत अनुराग॥

अशन वसन हूं देहि तेहि, सहि दुर्वचन अनेक।
साँचे हूं गुन कम्ल में, सियवर कोप न नेक॥

केवल जीव अजान हित, दीन दयाल कृपाल।
अज अदृश्य सोउ प्रगट है, हरत मोह भय माल॥

अर्चा रूप अनूप धरि, ग्राम ग्राम प्रति गेह।
बसत ताप तारक सतत, तऊ न सजत सठ नेह॥

सुलभ सर्वदा सेव विन, पुजवत जन अभिलाष।
सकृतहि मात्र प्रनाम करि, अरी करत सुसाख॥

ताते परम परेश पद, कमल अमल रस धाम।
सेवनीय संतत सुधी, त्रिविधि भांति अभिराम॥

दृढ़ सम्बन्ध उजाय जिय, तिय तन तनय तेआगि।
भव्य भाव भारी भरो, भान भावना पागि॥

स्वामी सियवर सहज ही, है सबको हिय हेरु।
विविधि वासना विषम सन, सबही विधि मन फेरु॥

है सब विश्व विहार के, शेषी सिय सह राम।
सुभग शरीरी सुचि सदा, समुझत उर आराम॥

श्री सीतापति सेइये, नित नव भाव बढ़ाय।
बिपुल कलेश न पाइये, नाहक सुगुन गमाय॥

यहि विधि ते हिय होत है, दृढ़ सम्बन्धित ज्ञान।
श्रीयुगलानन्य शरन रहस, पुरन प्रेम निधान॥

बारहि बार धिकार मोहि, मोह ग्रसित दिन रैन।
सुमिरयो नही कृपाय तन, रूप नाम सुख ऐन॥

श्री सर्वेश्वर सियावर, अंशी अमल अनूप।
अंश भूत सब जीव गुन, लघु दीरघ अनुरूप॥

शेषी सहज स्वरूप प्रभु, निर उपाधि जिय जानु।
शेष आपनो रूप गुनि, रघुवर भोग्य प्रमानु॥

याके ज्ञान विवेक हित, हेतु उपनिषत नाम।
बरन मनहरन जुगल लखु, राम लोक अभिराम॥

पंच विंश अक्षर मधुर, मीत मकार विराज।
जीव आत्मा परखु तिमि, पंच विंश सह साज॥

चौबिस तत्व बिकार मय, प्राकृत मन अनुमानु।
याते परे पचीश पुनि, जीवातम पहिचानु॥

याते मध्य मकार के, निज स्वरूप सुठि बोध।
श्रीयुगलानन्य शरन समुझि, सहज विनाश विरोध॥

मन 'ज्ञाने' इह धातु तिमि, 'मदि' प्रमोद मय ख्यात।
ताते ज्ञानानन्द युत, रूप सगुन लखु तात॥

रंग रहस रति प्रद विशद, राम स्वरूप रकार।
विदित विभव ब्रह्मांड बहु, वेद पुरान पुकार॥

ताते रेफ सुवाच को, सेवक वाच्य मकार।
रहत एक रस बधहूं, मोक्ष मांझ धियधार॥

मध्य अकार विकार हर, बोधक उभय स्वरूप।
जीव जानकी जानिको, सतत अनन्य अनूप॥

तीन काल नहि अपर संग, है याको सम्बन्ध।
इहै श्री सद्गुरु रूप है, बदत अकार सुसंध॥

अट गत्यर्थक धातु ते, आयत अर्थ विचारु।
ताते सिद्ध अकार वर, सुन्दर रहित विकार॥

श्री आचारज पद कमल, अमल विनीत बिहीन।
कोटिन करि उपाय तरु, वृथा सुवच परवीन॥

श्री स्वामिनि सिय रूप पुनि, मध्य रकार हमेश।
जाते नित सम्बन्ध दृढ़, छन पल बिरह न लेश ॥
प्रभा प्रभाकर साथ जिमि, चन्द्र चन्द्रिका संग।
सदा एक रस विरह बिनु, सिय पिय मिलन सुरंग॥
याही ते जुग रूप सुचि, शेषी सतत न भेद।
तेहि हित सम्पति चरन नित, भजु बारक भव खेद॥
जो चाहत तू अमर पद, तिमि निज पर प्रिय बोध।
तौ श्री सीतावर अनुग, दूजे रहित निरोध॥
निज सुख सहज प्रकाश बिनु, बीत्यो कल्प करोर।
स्वर्ग नर्क पाताल इत, भ्रमत अविद्या कोर॥
करुणा सागर अवध पति पद सद रज बरछाह।
भूत भावना भिन्न करु, बिविध प्रकार विकार॥
वर्तमान सुख खान अति, चित चेते चित चाहि।
भूत भविष्य तिदोष दर, तिमिर सहज नसि जाहि॥
श्री सियवर सम्बन्ध गहि, जहि सब आस अहान।
श्रीयुगलानन्य प्रयास बिनु, स्वपर रूप पहिचान॥
वरनो बिमल विनोद हित, शेष सुवृति परत्व।
जेहि जिय दरसत एक रस, सो प्रधान सब तत्व॥
श्रीसीतावर रसिक पद, पंकज पर निज जानि।
सेवत मन बच काय करि, परिहरि हृदय गलानि॥
परम भोग्य सुख राशि निज, रूप सुधारक येह।
या बिनु अपर उपाय सब, तृन समान सम खेह॥
जब समझो शेषत्व दृढ़, स्व स्वरूप अनुकूल।
सोइ पुरुष प्रयत्न बिनु, होत विगत प्रतिकूल॥
जो फल मति करि गहे इह, शेष विशेष न जान।
तौनहि शेष सुवृति पर, पुनि शेषत्व विहान॥
शेष अभाव भये सहज, निज स्वरूप को हान।
ताते हृदय विचारि दृढ़, पुरुष प्रयत्न सुजान॥
सेवक सेवा ते सुभग, सदा कृतारथ रूप।
टहल हीन सो दास किमि, समझहु समुत अनूप
श्रीसियवर स्वामी सरस, संमत सहज सुभाव।
दी किंकर सब भांति ते, इह व्यवसाय बनाव॥

श्रीसीतापति टहल बिन चिद्घन चित अनुकूल।
कीजे पुरुष प्रयत्न इह, परम रहित प्रतिकूल॥
सियवर चित अनुकूलता, किमि जानौ मैं अज्ञ।
बिना बोध कैसे सधे, प्रभु अनुकूल सुयज्ञ॥
श्री श्री सतगुरु वर्य्य ते, सुनि गुनि शिष्टाचार।
तैसे ही सत शास्त्र ते, जानिय भजन प्रकार॥
ताते श्री सियराम चित, वृत्ति विशद अनुकूल।
निज स्वरूप अनुरूप तिमि, सेवा सुचि मुद मूल॥
साधन फल सेवा गुने, सुने अपर नहि बैन।
भुने वासना बीज भव, भव भव न धुने चित चैन॥
परम पुरुष पर यतन इह, टहल महल दिन रात।
श्रीयुगलानन्य शरन अपर, पुरुषारथ लघु बात॥
अर्थ धर्म तिमि अहित हित, काम मोक्ष युत चारि।
पुरुषारथ तंत्र न बिदित, बूझहि विज्ञ विचारि॥
सिय बल्लभ सेवा सरस, सेवक चहुँ परिपाक।
श्री युगलानन्य शरन सदा, सुमिरिये नाम सुवाक
है या पर गाथा कलित, एक अनूप अनल्प।
पै मै तेहि निज बोध हित कहो स्वल्प अविकल्प॥
श्री जीवन धन प्रान प्रिय, एक समय सुख पाय।
बोध परीक्षा लेत सुचि, अपने निकट बोलाय॥
कौन पदारथ हेतु मम, सेवत सुपद हमेश।
देह गेह ममता रहित, नित करि अमित कलेश॥
जो याचो सो देय हम, पलक परे नहि बीच।
अति प्रसन्नता समुझि मम, जनि सकुचो गत मीच॥
सुनि सनेह सानी गिरा, गर्भित रहस अनेक।
बोल्यो रसिक सुसंत तम, विह्वल बचन विवेक॥
श्री करुणेश कृपा करी सब विधि पूरन काम।
कौन चीज याचो दया, सिन्धु सकल सुख धाम॥
सामीपादिक मुक्ति की, मो मन रंच न चाह।
चाहो चित चिंतन चरन, विगत काम दिल दाह॥
काल कराल कलेश कुल, कारन काज समेत।
ताते हिय अभिलाष नहि, जानिये कृपा निकेत॥

श्रीसीतावर सुखद सद, हेत परीक्षा फेर।
वर वानी बोले विकल, ताई समन सुमेर॥
चाह रहित सेवा किये, कौन लाह उत्साह।
हृदे भली विधि हेरिये, हौं समीप तब नाह॥
संत सनेही हरष युत, उत्तर दियो अनूप।
त्याग योग दरसन नहीं, अद्भुत टहल स्वरूप॥
पुनि तब मम सम्बन्ध दृढ़, स्वामी सेवक भाव।
ताते होत अकाम ही, सहज सहित चित चाव॥
तैसे ही अति प्रीति पर, प्रेरित करत कृपाल।
अस कहि गहि मुख मौनता, समुझि ढिढ़ाई चाल॥
श्रीसीता बल्लभ सुनी, अति अद्भुत रीति।
बारहि बार सराहि तेहि, धन्य अलौकिक प्रीति॥
जौलौ ऐसी अमल रति, होत उदित नहि होय।
तौलौ मम मृदु माधुरी, कहँ पावै कमनीय॥
कलित कृपाकर मिले तेहि, अति हित कंठ लगाय।
बाके जिय जीवन जरी, प्राति प्रकर्ष लगाय॥
ऐसो सेवा सुधन बिन, सजन भजन नहि नेक।
होय एकेगो कैसेहूं, सुचि संकेत विवेक॥
रहै हमेशहि न्यून सुख, संत सनेह विहीन।
ताही ते सत संग सजि, संतत सुपद प्रवीन॥
पूजा विधि षोडश करै, नृत्य गान बहु रीति।
तऊ न रीझत सीयवर, विगत संत पद प्रीति॥
ताते रसिकन संग सजु तजु छल छकन सुभाव।
महामोद उत्साह उर, उदय होय भल भाव॥
जे भीने सियलाल गुण, रूप धाम रस बीच।
पूजो तिनके पद कमल, अमल विमरदन मीच॥
सकल श्रुतिन सद सार सुचि, संत सुयद दृढ़ प्रीति।
याही हित नित कीजिये, नाशन निखिल अनीति॥
ताते सीतराम शुभ, संत सरस पद सेव।
करत रहो दृढ़ व्रत गहो, लही अगोचर भेव॥
भाष्यो मति अनुसार कछु, शेष सुव्रति परत्व।
रसिकन की करुना करी, सहज सोहावन सत्व॥

यामे अर्थ अनेक रस, पूरन हरन अनर्थ।
श्रीयुगलानन्य विहाय वद, बाद विलाय कदर्थ॥
नित्य सूरि चित चूर करि, पगे रंगे नव नूर।
स्वादी सरस रसेश रस, अनुदिन जीवन मूर॥
सकल शूर सिर मौर सो, जो जीते जन जाल।
उन्हीं के पद पंकरूह, वंदित समन दुशाल॥
वानी पानी पाद पुनि, पायूपस्थ समेत।
श्रवन नयन त्वच घ्रान तिमि, रसना करन उपेत॥
मन बुधि चित अभिमानहूं, सहित चारि दस मीत।
करिके नित्य रोघही, विषय ओर ते प्रीत॥
पराधीनता करन गन, भली प्रकार विहाय।
निश दिन तिन्हि स्वतंत्र करि, परिहरि सुर समुदाय॥
श्रीसिय बल्लभ सुमन रस, अनुभव हेतु खिकार।
जानि हृदे परिकर सदृश, समता सजग सम्हार॥
तन मन करन कदंब निज, रूप सियावर मांझ।
लीन करै रस एकही, समुद भोरहूं साँझ॥
श्रवन सजे श्रुति सुधा सम, सुजस नाम अभिराम।
दशा अमल उन्मत्त सम, चढ़े कढ़े कुल काम॥
विश्व विहित वानी विषम, सुने न प्रेम लगाय।
श्रीयुगल अदाग दिल, कीरति सुरति जगाय॥
दिव्य भव्य मनहरन श्री, सीतावर वसनादि।
धारन करै सप्रेम नित, जीते त्वाचा विषादि॥
परसाये बिन श्याम सिय, सोहन सुतन सुचीज।
निजि वपु महि पहिरे नहिं, समन हार विष बीज॥
रसना नवल अनूप गुण, गान करे सिय राम।
श्रीयुगलानन्य लहै परम प्रियतम धाम॥
नाना विधि संस्तुति सजे, मगन होय गुन मध्य।
श्रीयुगलानन्य शरण सोई, समुझो काल अवध्य॥
नैननिते निरखे सदा, मूरति मधुर अनूप।
श्रीयुगलानन्य विकार वन, निरखत अति तम कूप॥
सरस सुगंध सु नवल, अंग परसित घ्रान कराय।
पावे परम प्रमोद प्रिय, हिय अनुराग भराय॥

सेवा सुभग सनेह युत, करहि करै हर्षाय।
आलस लौकिक मान तजि, निज सरुप परषाय॥
सुपत सतत सियराम मग गवन करावे रोज।
असत हरित से खींच करि, समुझै सतजन चोज॥
श्रीकौशलपुर हर तरफ, फिरे सहित अनुराग।
जाय न आन कुदेश कहुँ, अति विकाश बड़भाग॥
पायूपस्थ उभय सदा, सुचि राखे सब तौर।
सेवा हित श्रीराम घन-श्याम गुनै गुन गौर॥
सुमन सुमन सम सरस तन, अन्तर सगुन रमाय।
संकल्पादिक दाह निधि, द्विवधा विविध बहाय॥
चितचिंतन चितवन चरित, चौगुन चाव चढ़ाव।
गौर श्याम अभिराम वपु, विगत कुवास कढ़ाव॥
विमल बुद्धि संयुत सदा, निज पर निश्चय रूप।
विश्व बिषय व्यवहार को, मनन परिहरै रूप॥
अहंकार पुनि श्रीसिया वल्लभ सुचि सम्बन्ध।
वपुषादिक अभिमान दुखखान गनै अनुसंध॥
याही विधि कुल करन गुन, दोष विशेष विचारि।
पगे प्रिया प्रीतम रहस, बहस विशाद विसारि॥
सदा सम्भारे भाव रस, रूप भावना इष्ट।
श्रीयुगलानन्य अयास विन पावे अखिल अभिष्ट॥
जाने बिना हृषीक के, अचल अनन्य रहस्य।
सपनेहू दुर्लभ समुझि, कीजै कैद अवश्य॥
विषयादिक विष विषयते, करै अखंड निरोध।
शूर शीष मणि संत सु, लहै रूप युग बोध॥
प्रत्याहार उदार ते, होत बशी मन भूत।
ताते बशि एकान्त वहूं, लाव नाम शुचि सूत॥
विष वलीत मन मलिन तर, रहित हमेश समच्छ।
सब प्रकार गुण दोष मय, विगत सोहावन स्वच्छ॥
विषय बढ़ाय घटत नहि, अनल हविष समतूल।
ताते युगलानन्य नित, कीजै प्रिय अनुकूल॥
विषयी जीवन के निकट, सपनेहु भूलि न जाय।
क्षण में तिनके संग करि, विषय चाह उमगाय॥

हृषिकेश श्रीराम पद, जेहि तेहि भांति लगाय।
समन करन जन खेद गत, अवशवस्य हो जाय॥
सुभग शिरोमणि सूर सोई, जेहि जीत्यो मन जंग।
तिनकी सुस्तुति दशहु दिशि होत बढ़ावन रंग॥
मधुर मुमुक्षु रहस अब, वर्णत हौं सजि प्रेम।
जाके हृदय उदय भये, भूषणछिति दुति हेम॥
निज स्वरूप संसार मधि, करि सुस्मरण विशेष।
घोर दोष दुःख सदन गुणि, भवनिधि अगम परेष॥
सबदादिक जलजन्तु जहँ बसत काल कटुग्राह।
वार पार रंचक नहिं है अति विषम अथाह॥
ऐसो विश्व समुंद में, मगन भयो मैं मूढ़।
करमादिक बश इह दशा, हाय विशारि गुण गूढ़॥
इत्यादिक दग दोष तकि, भीत भई बहुभांति।
कीजे कौन उपाय अब, मिटै भ्रांति चित शांति॥
जौवन युवती रूप रस, धन धरनी समुदाय।
केवल मृषा तृषास्पद, भव भव प्रति दुःखदाय॥
निकट सदा पल पल प्रवल, गरजत काल प्रचंड।
निमिषारद मधि मर्दि मोहि रज लघु करै घमंड॥
उर उदवेग विशेष सजि, तेग-वेग-जगजाल।
महा खेद अन्तर गुणे, धुने सुशीश वेहाल॥
ब्रह्मादिक कापत सभन, गनै कौन जग जीव।
येन केन विधि पाइहौं, प्राण पियारो पीव॥
करो कौन आचरण गृह त्यागि विचारत चित्त।
कढै कलंक कुपंक कृत, लहि प्रीतम बढ़ वित्त॥
हृदय विचारत फुर्यो इह, अदभुत रहस अनूप।
जेहि तेहि विधि अब भेटिये, श्रीकौशलपुर भूप॥
परम पुरुष पर यतन इह, सिय रघुवर चित चाह।
सुदृढ़ धारि श्रीगुरु निकट गयो सहित उत्साह॥
पाहि पाहि आरत हरण, शरणागत प्रतिपाल।
हौं व्याकुल जगजाल लखि, कीजिये वेगि निहाल॥